विश्वकवि

रवीन्द्र गीताञ्जलि

[साहित्यिक गद्यानुवाद]

अनुवादक

जगत शङ्खधर

प्रकाशक

मातृ-भाषा-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग ।

द्वितीय संस्करण]   १९४३   ' मूल्य १)

प्रकाशक—

हर्षवर्द्धन शुक्ल

व्यवस्थापक

मातृ-भाषा-मंदिर

दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—

चिन्तामणि हटेला

हिन्दू समाज प्रेस, कीटगंज, प्रयाग

हमारी धुन

अपनी श्रेष्ठता और आदर्श-वादिता के लिये रवीन्द्र गीतांजलि ने आधुनिक अंग्रेजी विश्व साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान पाया है। पाश्चात्य विद्वानों को भारत की विद्वत्ता का लोहा मनवाया है। हम भारतीयों को इसका गौरव है। बंगला की रवीन्द्र गीतांजलि इसी कारण प्रसिद्ध है। प्रत्येक साहित्य प्रेमी को एक बार पढ़ने की इच्छा तो होती ही है। जो लोग बंगला और अंग्रेजी नहीं जानते हैं वे हिन्दी में देखना चाहते हैं। किन्तु जैसी यह पुस्तक है उसको लक्ष में रखकर अनुवादकों ने अनुवाद नहीं किया है देखने से स्वयं पता चल जाता है।

इस पुस्तक के योग्य अनुवादक ने अपनी शक्ति लगा कर इस अनुवाद को साहित्यिक और लालित्य पूर्ण गद्य में अनुवाद किया है। गद्य भी पद्यमय प्रतीत होता है। एक एक शब्द चुन चुन कर ऐसा सटीक बैठाया है कि पढ़ते ही कलाकार की पवित्र भावना का दिल पर प्रभाव जमे बिना नहीं रहता है। यही इस अनुवाद की विशेषता है।

प्रकाशक ने भी इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर इसे प्रकाशित किया है। अगर योग्य विद्वानों ने इस अनुवाद का आदर किया तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

प्रकाशक

हर्षवर्द्धन शुक्ल

द्वितीय संस्करण

मैं जैसी आशा करता था जनता ने इस अनुवाद का वैसा ही आदर किया। यही करण है कि पुस्तक बड़े आदर के साथ हाथों हाथ बिक गई और दूसरा संस्करण शीघ्र कराना पड़ रहा है। यत्र तत्र जो त्रुटियाँ थीं वह भी इस संस्करण में दूर करने का प्रयत्न किया है। इसलिये विद्वजनों का हृदय से आभारी हूँ।

आपका

हर्षवर्द्धन शुक्ल

विश्व कवि रवीन्द्र

गीताञ्जलि

[१]

तुमने मुझे अपना बनाया, तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है। इस भंगुर पात्र को तुम बार बार खाली करते और प्रतिबार नव-जीवन रस से परिपूर्ण करते हो।

बाँस की इस क्षुद्र वंशी को तुम पर्वत और घाटियों में लिए फिरते हो और इसमें नित नूतन संगीत का संचार करते हो।

तुम्हारे अमर स्पर्श से मेरा क्षुद्र हृदय हर्ष में भर कर सीमायें तोड़ अमिट गान करने लगता है।

तुम्हारे अनन्त वरदान मेरे इन अत्यन्त छोटे हाथों में ही आते हैं। युग व्यतीत होते जाते हैं, और तुम भरते ही रहते हो, फिर भी उन हाथों में स्थान खाली ही है।

[२]

तुम जब मुझसे गाने को कहते हो तो ऐसा लगता होता है कि गर्व से मेरा हृदय फट जायगा। उस समय मेरे दोनों नेत्र तुम्हारी ओर निर्निमेष देख कर छल-छला आते हैं।

मेरे जीवन में जो कठिन अथवा कटु है, वह सब मधुर गान में गल जाना चाहता है— और मेरी समस्त साधना आराधना समुद्र पार उड़ते सुखी पक्षी की भाँति पङ्ख फैला देती है।

तुम मेरे गीत-राग से तृप्त हो यह मैं जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि गायक के रूप में ही मैं तुम्हारे सम्मुख आता हूँ।

जिनका कभी स्पर्श नहीं कर सकता, तुम्हारे उन्हीं चरणों को मैं अपने गान के दूर तक फैले पंखों की कोर से छूता हूँ।

गीत में चेतनाहीन हो मैं आत्मविस्मृत हो जाता हूँ, और अपने प्रभु को सखा कह कर पुकार उठता हूँ।

[३]

हे गुणी! तुम किस तरह गीत गाते हो, मैं तो अवाक् होकर सुनता ही रह जाता हूँ।

तुम्हारे संगीत के प्रकाश से विश्व भर जाता है। तुम्हारे गीत के स्वरों का पवन आकाश में बहने लगता है। तुम्हारे संगीत की सुरधुनी समस्त पथरीली बाधायें हटा आगे बढ़ती जाती हैं।

मेरा मन भी तुम्हारे साथ गाने का इच्छुक है, पर स्वर खोजने में व्यर्थ भटकता है। कुछ बोलना चाहता हूँ, पर वाक्-शक्ति रुकती है, और हार मान कर मैं रो उठता हूँ। मेरे प्रभु! मेरे चारों ओर स्वरों का जाल बुनकर तुमने मुझे किस फन्दे में डाल दिया है?

[४]

मेरे जीवन प्राण, यह जान कर कि तुम्हारा जीवित स्पर्श मेरे शरीर के प्रत्येक अंग पर है, मैं अपना शरीर सदैव पवित्र रखने का यत्न करूँगा।

यह जानकर कि तुम वह सत्य हो, जिसने मेरे मन में विवेक का प्रकाश आलोकित किया है, मैं अपना मन असत्य से सदा दूर रखने का प्रयत्न करूँगा।

यह जान कर कि मेरी आत्मा में तुम्हारा वास है, मैं अपने हृदय से समस्त दुर्भावना हटा कर पुष्प में अपना प्रेम निहित कर दूंगा।

और यह जानकर कि तुम्हारा बल मुझे शक्ति प्रदान करता है, अपने कर्मों द्वारा तुम्हें प्रगट करने का मेरा प्रयत्न रहेगा।

[५]

पल भर को मैं तुम्हारे समीप बैठना चाहता हूँ। अपना काम मैं फिर समाप्त करता रहूँगा।

तुमसे अलग रह कर मेरे मन को चैन नहीं, तुमसे दूर रहने पर मेरा काम तटहीन श्रमसागर में अन्तहीन श्रम-पूर्ण हो जाता है।

अपने उच्छ्वास और मर्मर सहित वसन्त आज मेरे गवाक्ष पर आ पहुँचा है, और कुसुमित कुञ्ज में भ्रमर अपना संगीत गुञ्जार रहे हैं।

तुम्हारे सम्मुख शान्त बैठकर निस्तब्धता में जीवन-अर्पण के गीत गाने का यही अवसर है।

[६]

इस क्षुद्र पुष्प को तोड़ लो, अब विलम्ब मत करो। कहीं ऐसा न हो कि यह टूट कर धूल में गिर जाय। तुम्हारी माला में इसे स्थान मिले या न मिले, पर उसके भाग्य में तुम्हारे स्पर्श की वेदना रहे इसलिये उसे तोड़ लो, अब तोड़ने में विलम्ब मत करो। कहीं अनजानेही दिन न बीत जाय, और पूजा की बेला समाप्त हो जाय।

यद्यपि इसका रंग गहरा नहीं है और इसकी गंध हलकी है, इसे अपनी सेवा में ले लो—अवसर रहते इसे तोड़ लो।

[७]

मेरे गीत ने अपने सब अलंकार दूर कर दिये हैं। तुम्हारे समीप इसे साज का अहंकार नहीं है। अलंकार हमारे मिलन में बाधक होते हैं, वे तुम्हारे और हमारे बीच अड़ जाते हैं, उनको झंकार में तुम्हारे मंदस्वर सुनाई नहीं देते।

तुम्हारे समीप मेरा कवि का गर्व नहीं ठहरता। हे महाकवि, मैं तुम्हारे चरणों के नीचे बैठा हूँ। एक सामान्य वंशी की भाँति जीवन को सीधा सादा बना पाऊँ और उसके समस्त स्वरों में तुम्हारा संगीत भर सकूँ।

[८]

वह शिशु जो राजकीय वस्त्रों से सजा रहता है, और गले में रत्नहार पहने है, खेल का सारा आनन्द खो देता है; उसके वस्त्र पग पग पर बाधक होते हैं।

उनके फटने या धूल के दाग लगने के भय से वह सब से अलग रहता है, और चलने फिरने में भी डरता है।

माता, यदि तुम्हारे सजावट के बन्धन धरती की स्वस्थ धूल से किसी को अलग रखते हैं; यदि वे मानव जीवन के महान् पर्व में प्रवेश करने के अधिकार से किसी को वंचित करते हैं, तो उनके कोई लाभ नहीं।

[९]

अरे मूर्ख ! अपना बोझ अपने ही कंधों पर ढोने का प्रयत्न ! अरे भिखारी ! अपने ही द्वार पर भीख माँगने आना !

अपना समस्त भार उस पर छोड़ दे जो सब कुछ उठा सकता है, और कभी पीछे नहीं हटता।

तेरी वासना की साँस जिस दीपक पर पड़ती है, उसे तत्काल बुझा देती है। वह अपवित्र है—उसके अशुचि हाथों अपना वरदान न ले। केवल वही स्वीकार कर जो पावन प्रेम से मिले।

[१०]

तुम्हारे चरण वहाँ विराजते हैं जहाँ दीनातिदीन, निम्नतम और वे व्यक्ति रहते हैं जिनका सब कुछ लुट गया है।

मैं जब तुम्हें प्रणाम करने का प्रयत्न करता हूँ, तो मेरा प्रणाम उस गहराई तक नहीं पहुँचता जहाँ दीनातिदीन, निम्नतम और सर्वहारा लोगों में तुम्हारे चरण विराजते हैं।

अहंकार तो उस स्थान की सीमा पर भी नहीं पहुँच सकता जहाँ तुम भूषणरहित, दीन दरिद्रवेष में सबसे पिछड़े, सब से नीचे, उन लोगों के बीच घूमते हो जिनका सब कुछ लुट गया है।

मेरा हृदय वहाँ का मार्ग कभी नहीं पा सकता जहाँ तुम दीनातिदीन, नीचातिनीच, सर्वहारा और संगी साथी से हीन लोगों में रहते हो।

[११]

यह सब भजन पूजन माला जप छोड़ दे। अरे! सब द्वार-बन्द किये, देवमन्दिर के अँधेरे कोने में तू किसको पूज रहा है? आँखें खोल कर देख देवता तेरे सम्मुख नहीं हैं!

वे तो वहाँ हैं जहाँ किसान कड़ी भूमि भेद कर खेती कर रहा है—जहाँ मजदूर पत्थर फोड़ रहा है। वह धूप और वर्षा में उनके साथ रहते हैं, और उनके वस्त्र धूलि धूसरित हैं। अपना उत्तरीय अलग रख उनके ही समान धूल-भरी धरती पर आ।

मुक्ति! अरे यह मुक्ति कहाँ है? भगवान् ने स्वयं ही सृष्टि निर्माण का भार सहर्ष स्वीकार किया है; वे तो सदा के लिये हम सबसे बँध गए हैं।

अपना ध्यान छोड़, फूल और धूप अलग रख दे। यदि तेरे वस्त्र धूल धूसरित और तार तार हो जाँय तो क्या हानि है? उसके साथ एक हो कर परिश्रम करते करते पसीने में तर हो जा।

[१२]

मेरी यात्रा में बहुत समय लगता है, और मुझे दूर जाना है।
मैं उषा की प्रथम रश्मि के रथ पर चढ़ कर आया और अनेक नक्षत्र और तारकों पर होते हुये विस्तृत विश्व-पथ पर अग्रसर हुआ।

तेरे समीपतम पहुँचने का यह सब से दूर का मार्ग है, और सरलतम स्वरों पर आधिपत्य पाना अत्यन्त कठिन है।
अपने द्वार तक पहुँचने के लिये पथिक को कितने ही पराये द्वार खटखटाने पड़ते हैं, और अन्त में अन्तस् पहुँचने में समस्त ब्रह्माण्ड का परिभ्रमण करना होता है।
आँखें बन्द कर 'त्वमसि' कहने से पूर्व वे चारों ओर भटकती रहीं।

'क्वासि की जिज्ञासा भरी पुकार ने अजस्र अश्रुप्रवाह में गल कर 'सोऽहं' के विश्वास की बाढ़ में संसार को मग्न कर दिया।

[१३]

यहाँ मैं जिस गीत को गाने आया था वह आज तक न गाया जा सका।

मैंने अपने दिन साज के तार साधने में ही बिता दिये।

अभी ताल ठीक नहीं बँधी, स्वर अपनी जगह नहीं बैठते; मेरे हृदय में केवल उत्कण्ठा की ही आकुलता है।

आज भी फूल नहीं खिला; केवल पवन विलाप कर रहा है।

मैंने उसका मुँह नहीं देखा है, न उसकी वाणी सुनी है; अपने घर के सामने के मार्ग पर से केवल उसकी पगध्वनि सुनी है।

जीवन-सा भारी सारा दिन, उसका आसन बिछाने में ही बीत गया। घर में दीपक का आलोक नहीं है; मैं उसे घर में कैसे बुलाऊँ।

मैं उसे पाने की आशा लिये बैठा हूँ, पर अभी उससे मिलन नहीं हुआ।

[१४]

मेरी वासनायें अनेक हैं और मेरी पुकार करुण है, परन्तु तुमने कठोरता-पूर्वक वञ्चितकर मुझे सदा बचाया। और यह प्रबल दया मेरे जीवन भर संचित रहेगी।

अति इच्छा के संकट से बचा कर तुमने मुझे दिन-प्रति-दिन उन सामान्य महादानों के योग्य बनाया है, जो तुमने अयाचित ही प्रदान किये हैं—यह सूर्य, आलोक, तन, मन और प्राण!

ऐसे भी अवसर आते हैं जब मैं आलस्यवश रुका रह जाता हूँ, अथवा जब मैं जाग कर अपने लक्ष्य की खोज में दौड़ पड़ता हूँ; पर तुम निष्ठुरतापूर्वक मेरे आगे से हट जाते हो।

दिन-प्रति-दिन निर्बल अनिश्चित कामनाओं के संकट से बचा कर और यदा कदा वंचित कर तुम मुझे पूर्ण रूप से अपने ग्रहण करने योग्य बना रहे हो।

[१५]

मैं यहाँ तुम्हारे गीत गाने भर के लिये हूँ, इस संसार-रूपी दरबार में तुमने मुझे स्थान दिया है।

हे नाथ, तुम्हारे संसार में मुझे कोई काम नहीं; मेरा निरर्थक जीवन केवल उद्देश्यहीन स्वरों में ही ध्वनित होने में समर्थ है।

हे राजन्, अर्ध रात्रि को नीरव अंधकारपूर्ण देवालय में जब तुम्हारे मौन पूजन की बेला हो, उस समय अपने सम्मुख गाने के हेतु खड़े रहने का आदेश दो।

प्रातः समीर में जब स्वर्णिम वीणा ध्वनित होगी, तो मुझे उपस्थित रहने के आदेश से मान प्रदान करना।

[१६]

संसार के आनन्दोत्सव में मेरा निमंत्रण है; मेरा जीवन धन्य हुआ। मेरी आँखें रूप से भरी घूम घूम कर साध मिटाती हैं, मेरे कान गंभीर स्वर में मग्न हैं।

इस उत्सव में मेरा वंशी बजाने का कार्य था; और मैंने उसमें अपने प्राण लगा दिये।

क्या अब समय आ गया कि तुम्हारे दर्शन कर अपना मौन अभिवादन तुम्हें अर्पित करूँ ?

[१७]

मैं इसीलिए बैठा हूँ कि प्रेम के हाथों अपने को उन्हें अर्पित कर दूँ। इसी कारण बहुत देर हो गयी है और मैं ऐसे दोष का दोषी हूँ।

विधि विधान की बन्धन-डोर लिए वे मुझे कस कर बाँधने आते हैं; और मैं सदा हट जाता हूँ क्योंकि मैं प्रेम के हाथों अन्त में अपने को उन्हें समर्पित करने की प्रतीक्षा में हूँ।

लोग मेरी निन्दा कर मुझे असावधान कहते हैं; मुझे दोषी ठहराने में निश्चय ही वे सत्य कहते हैं।

हाट उठ गयी, और लेन देन का मेला समाप्त हो गया। जो मुझे निरर्थक बुलाने आये थे वे रोष में लौट गये।

मैं तो प्रेम के हाथों समर्पित होने बैठा हूँ।

[१८]

मेघ पर मेघ जमा हो रहे हैं और अँधेरा घिर रहा है। हाय प्रियतम! तुमने मुझे द्वार पर अकेला क्यों बैठा रखा है?

मध्याह्न के कामकाज के समय मैं भीड़भाड़ में लगा रहता हूँ, पर आज के निर्जन, घन-दिवस में मैं तुम्हारी ही आस लगाये बैठा हूँ।

यदि तुम मेरी अवहेलना कर न मिलोगे, तो यह बदली भरी घड़ियाँ कैसे कटेंगी।

आँखें फाड़े मैं दूर तक अँधियारे आकाश की ओर ताकता रहता हूँ और मेरे प्राण चञ्चल वायु में रुदन करते फिर रहे हैं।

[१९]

यदि तुम बात नहीं करते तो मैं तुम्हारी नीरवता को हृदय में

भर कर वहन करूँगा। मैं वैसे ही शान्त रहूँगा जैसे रजनी तारा-लोक में धैर्य पूर्वक निर्निमेष झुकी जाग्रत रहती है।

प्रभात अवश्य होगा, अंधकार का लोप हो जायगा, और तुम्हारी वाणी की स्वर्णिम धारा आकाश से फूट कर बहेगी।

तब तुम्हारे शब्द गीतों के पंख लगा मेरे पक्षियों के से नीड़ में फैल जायँगे, और तुम्हारा संगीत मेरे वन कुंजों के फूलों में फैल जायगा।

[२०]

जब कमल खिले उस दिन मेरा मन अस्थिर था, और मुझे पता न चला। मेरी डलिया खाली थी और फूलों से ध्यान उतर गया।

बीच बीच में मुझ पर अवसाद छाया रहा, मैं स्वप्न से चौंक उठा और दक्षिण पवन में मुझे अनुपम मधुर गंध का आभास हुआ।

अस्पष्ट गंध से मेरा हृदय व्याकुल हो उठा और मुझे ज्ञात हुआ कि यह पूर्णता के लिए उत्सुक मधुर वासन्ती गंध है।

तब मैं यह नहीं समझा कि वह इतने समीप है, वह मेरी ही गन्ध है; और यह सम्पूर्ण माधुर्य मेरे ही हृदय की गम्भीरता से प्रस्फुटित है।

[२१]

मुझे अपनी तरी खोलनी ही पड़ेगी। तट पर अलस समय व्यतीत हो रहा है। हाय! यह सब मेरे ही कारण!

बसन्त कुसुमित हो चुका और चला गया। और अब मुरझाए प्रयोजन हीन फूलों का भार लिए मैं रुका प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

तरङ्गें प्रबल हो रही हैं और तटवर्ती सघन वीथी में पीली पत्तियाँ मर्मर करती गिर रही हैं।

तुम किस शून्य की ओर ताक रहे हो? उस पार से आते सुदूरस्थ संगीत के स्वरों का स्पन्दन क्या तुम्हें वायु में नहीं मालूम पड़ता?

[२२]

सावन के बादलों की घनी छाया में दबे पाँव नीरव रात्रि की भाँति, सारे पहरुओं की दृष्टि बचा कर तुम चलते हो।

चिल्लाती हुई पुरवाई की अनवरत पुकार पर ध्यान न दे कर आज प्रभात ने आँखें मूँद ली हैं। सब समय जाग्रत नील गगन निविड़ मेघ से आवृत है।

कानन भूमि निःशब्द है और सब द्वार बन्द हैं। इस निर्जन पथ पर तुम एक-मात्र पथिक हो। हे मेरे एक-मात्र सखा! मेरे प्रियतम! मेरे घर के द्वार खुले हैं, उनके आगे से स्वप्न के समान मत चले जाना।

[२३]

हे सखा, आज इस आँधी से भरी रात में क्या तुम अभिसार के लिए निकले हो? आकाश हताश की भाँति क्रन्दन कर रहा है।

आज की रात मेरी आँखों में नींद नहीं है। मैं बार बार द्वार खोल कर बाहर अँधेरे में ताक रहा हूँ।

सामने कुछ दिखाई नहीं देता, पता नहीं तुम्हारा मार्ग किधर है!

कालिमा सी कृष्णा नदी के किस धुँधले तट से, गहन बन के किस दूरस्थ छोर से, अंधकार की किस जटिल गहराई से हो कर तुम मेरे पास आ रहे हो?

[२४]

यदि दिन बीत गया, पक्षियों ने कलरव-गान बन्द कर दिया, वायु क्लान्त हो कर मन्द बह रही है, तो अत्यन्त निबिड़ अन्ध-

कार का आवरण मुझ पर उसी भाँति डाल दो, जैसे तुमने धरणी को निद्रा की चादर उढ़ा दी है, और सांध्य बेला में म्लान कमल की पंखुरियाँ सुकुमारता पूर्वक बन्द कर दी हैं।

यात्रा समाप्त होने के पहले ही जिसका पाथेय समाप्त हो गया हो, जिसके परिधान क्षीण और धूलि धूसरित हो गए हों, जिसका बल टूट पड़ रहा हो, उस पथिक की लज्जा और दारिद्र्य दूर करो, और अपने करुणापूर्ण नैश आश्रय में पुष्प की भाँति उसे पुनर्जीवन दो।

[२५]

रात्रि के समय क्लान्ति से चूर तुम पर अपना भार छोड़ कर मैं निर्द्वन्द्व निद्रा में मग्न होना चाहता हूँ।

मेरे थके मन को अपनी आराधना के दीन साधन के हेतु बाध्य न करो।

दिन की थकी आँखों पर नव-जागृति प्रदान करने के लिये तुम ही रात्रि का आवरण डालते हो।

[२६]

वह आये और पास बैठ रहे, मैं फिर भी न जागी। अरे अभागी! वह कैसी नींद थी।

जब वह आये उस समय रात्रि नीरव थी; वीणा उनके हाथ में थी और उसके संगीत से मेरे स्वप्न ध्वनित हो गये।

हाय, मेरी रातें इस प्रकार क्यों नष्ट हो जाती हैं? जिसके निःश्वास मेरी निद्रा को स्पर्श करते रहते हैं उसके दर्शन मुझे कभी नहीं होते।

[२७]

प्रकाश! अरे प्रकाश कहाँ है? इसे कामना की प्रचंड अग्नि से प्रज्वलित करो।

दीपक तो है परन्तु शिखा में कोई स्फुरण नहीं— मेरे मन, क्या यही तुम्हारे भाग्य में है? हाय, तुम्हें इससे मरण कहीं भला होता!

दुर्भाग्य तुम्हारा द्वार खटखटा रहा है, उसका सँदेशा है कि तुम्हारे प्रभु जाग रहे हैं, और निशीथ घनान्धकार में प्रेमाभिसार के हेतु बुला रहे हैं।

आकाश मेघाच्छन्न है और अविरल वर्षा हो रही है। पता नहीं कि हृदय में कैसी विकलता है, यह क्या है?

बिजली की क्षणिक कौंध मेरे नेत्रों में अधिकतर घना अन्धकार भर देती है, और मेरा हृदय नैरा संगीत का पथ टटोल रहा है।

प्रकाश! अरे, प्रकाश कहाँ है? उसे कामना की प्रचंड अग्नि से प्रज्वलित करो। मेघ गरजता है और पवन शून्याकाश में प्रलाप करता बह रहा है। रात्रि कसौटी के पाषाण सी काली हो रही है। अन्धकार में अवसर न खो जाय। प्रेम दीप को अपने प्राण देकर जलाओ।

[२८]

बाधायें जड़ हो गयी हैं, पर उन्हें हटाने में मेरा हृदय व्यथित होता है।

मुझे मुक्ति की ही आकांक्षा है पर उसके हेतु आशा करने में मुझे लाज आती है।

मुझे निश्चय है कि तुम श्रेष्ठतम हो और तुम्हारे समान मेरा दूसरा हितैषी नहीं है, फिर भी घर की टूटी फूटी सामग्री के फेकने का साहस मुझमें नहीं है।

मेरा आवरण धूलि और मरण से भरा है; मैं उनसे घृणा करता हूँ, फिर भी उसे प्रेम से चिपटाये हूँ।

मुझ पर बड़े ऋण हैं विफलतायें महान् हैं मेरी लाज गोपन और भारी है; फिर भी जब अपने भले की प्रार्थना करता हूँ तो इस भय से काँप उठता हूँ, कि कहीं वह स्वीकृत न हो जाय।

[२९]

अपने नाम से जिसे मैं आच्छादित किये हूँ, वह नाम रूपी कारागार में क्रन्दन करता रहता है। मैं सदैव उसके चारों ओर यह प्राचीर उठाने में व्यस्त रहता हूँ। जैसे जैसे प्रतिदिन यह ऊँची उठती जाती है, इसकी छाया के अन्धकार में मैं अपने को भूलता जाता हूँ।

मुझे इस महान् प्राचीर पर गर्व है। और इस नाम में कहीं से कोई छिद्र न रह जाय इस कारण इस पर गारे पर गारा चढ़ाता रहता हूँ। पर मैं इसमें जितना ही प्रयत्नशील रहता हूँ, उतना ही अपने को भूलता जाता हूँ।

[३०]

अपने अभिसार में मैं अकेला ही निकल पड़ा। पर इस नीरव अन्धकार में कौन मेरा पीछा कर रहा है?

उससे पीछा छुड़ाने के लिये मैं हट जाता हूँ पर बच नहीं पाता।

अपनी चंचलता से वह धूल उड़ाता चलता है; मेरे प्रत्येक शब्द पर वह अपने ऊँचे स्वर में प्रतिध्वनि करता है। हे प्रभु, वह तो मेरा क्षुद्र "अहं" है, उसे लज्जा नहीं; पर उसे साथ ले तुम्हारे द्वार पर आने में मुझे लाज आती है।

[३१]

"बन्दी, मुझे बताओ तुम्हें किसने बाँधा है?"

बन्दी ने उत्तर दिया, "मेरे प्रभु ने। मैंने समझा था कि धन और शक्ति में मैं सबसे ऊपर रहूँ; और मैंने स्वामी का धन अपने ही भण्डार में जमा कर लिया। नींद लगने पर मैं स्वामी की शैया पर सो रहा, और जागने पर मैंने देखा कि अपने ही भण्डार में मैं बन्दी हूँ।"

"बन्दी, मुझे बताओ कि इन दृढ़ शृंखलाओं को किसने गढ़ा?"

बन्दी ने उत्तर दिया, "मैंने ही यत्नपूर्वक यह शृंखला गढ़ी है। मैंने सोचा था कि मेरी अपराजेय शक्ति विश्व को बन्धन में

रख कर मुझे अबाधित स्वतंत्रता देगी। इस उद्देश्य से मैं दिन रात बड़ी भट्टियों और कड़ी चोटों से शृंखला गढ़ता रहा। अन्त में जब कार्य समाप्त हो गया और कड़ियाँ पूर्ण और दृढ़ हो गयीं तो मैंने अपने को उनसे जकड़ा पाया।"

[३२]

संसार में जो मुझसे प्रेम करते हैं वे मुझे सब भाँति कठिन पाश में बाँध रखना चाहते हैं। पर तुम्हारा प्रेम इन सब से अलग है और वह सब से बढ़ कर है। तुम मुझे मुक्त किये हुए हो।

वे मुझे इस कारण अकेला छोड़ने का साहस नहीं करते कि कहीं मैं उन्हें भूल न जाऊँ। पर दिन पर दिन बीत जाते हैं और तुम्हारे दर्शन नहीं होते।

तुम्हें मैं अपनी प्रार्थना में स्मरण करूँ या न करूँ, तुम्हें हृदय में चाहे न रखूँ, पर तुम्हारा प्रेम फिर भी मेरे प्रेम की अपेक्षा करता रहता है।

[३३]

दिन रहते ही वे मेरे घर आये और बोले, "हम यहाँ थोड़ी ही जगह में पड़े रहेंगे।"

वे बोले, "हम देव सेवा में तुम्हारी सहायता करेंगे और पूजा के उपरान्त जो कुछ प्रसाद मिलेगा, ले लेंगे।" और वे दीन एवं मौन हो एक कोने में दुबक कर बैठ गये।

पर रात्रि के अन्धकार में देखता हूँ कि वे मेरे देवालय में बलपूर्वक घुस कर अपवित्र हाथों वेदी पर से पूजा की सामग्री उठाये लिये जा रहे हैं।

[३४]

अपना कहने को मुझमें केवल इतना रहे, जिससे मैं तुम्हें अपना सर्वस्व कह सकूँ।

मुझमें केवल यह कामना रहे कि मैं तुम्हें सब ओर समझूँ सब में तुम्हें पाऊँ और रात दिन तुम्हारे ही प्रेम में मग्न रहूँ।

मेरे पास उतना ही रहने दो जिससे मैं तुम्हें कहीं छिपा न सकूँ।

मेरा उतना ही बन्धन रहने दो जिससे मैं तुम्हारी इच्छा में बँधा रहूँ। तुम्हारा उद्देश्य इन प्राणों द्वारा वहन होगा—और वह बन्धन तुम्हारा प्रेम बन्धन है।

[३५]

जहाँ मन भय-रहित है और मस्तक ऊँचा रहता है।

जहाँ ज्ञान मुक्त है।

जहाँ संसार आभ्यन्तरिक संकीर्ण प्राचीरों से खण्ड खण्ड विभाजित नहीं कर दिया गया है।

जहाँ वाणी सत्य के मूल से निर्गत हो।

जहाँ अथक उद्योग पूर्णता की ओर अग्रसर हो।

जहाँ विवेक की निर्मलधारा ने मृत रूढ़ियों की शुष्क मरुभूमि में अपना मार्ग नहीं लुप्त कर दिया है।

जहाँ मन सदैव प्रशस्त विचार तथा कर्म की ओर तुम्हारी प्रेरणा से अग्रसर हो—

हे परमपिता ! स्वाधीनता के उस दिव्यलोक में मेरा देश जाग्रत हो।

[३६]

मेरे प्रभु, मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे मन की क्षुद्रता के मूल पर आघात करो।

अपने जीवन के सुख दुःख को सरलता से सहन करने की शक्ति दो।

सेवा भाव में मेरे प्रेम को सफल होने का बल दो।

दीन दुखियों को सदैव अपनाने और धृष्ठता के आगे कभी न झुकने का साहस दो।

दिन प्रतिदिन की क्षुद्रताओं से मन ऊँचा उठाए रखने की शक्ति दो।

और मुझे बल दो कि मैं अपनी शक्ति को तुम्हारी इच्छाओं के आगे सप्रेम समर्पित कर दूँ।

[३७]

मैंने सोचा था कि मेरी यात्रा मेरी शक्ति की अन्तिम सीमा पर आकर रुक गई है,— कि मेरे आगे का पथ अवरुद्ध है, पाथेय समाप्त हो गया है, और वह समय आ गया है कि मुझे नीरव अन्तराल में शरण लेना होगा।

पर आज देखता हूँ कि तुम्हारी लीला का अन्त नहीं। पुरातन भाषा जब मुख में आकर मर जाती है, उस समय हृदय में नूतन गान उमड़ते हैं; और पुराने पथ का जहाँ अन्त होता है वहीं नवीन देश अपने अद्भुत दृश्य के सहित प्रगट होता है।

[३८]

मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम्हें ही चाहता हूँ मेरा मन सदा यहीं

रटता रहे। मुझे रात दिन भटकाने वाली समस्त वासनायें मिथ्या और नितान्त निःसार हैं।

रात्रि जिस भाँति अन्धकार में प्रकाश की प्रार्थना निहित रखती है, उसी प्रकार मेरे गहन मोह में यह पुकार ध्वनित होती है - मुझे तुम्हारी, केवल तुम्हारी चाह है।

शांति पर उग्र आघात करते समय भी आँधी हृदय से शान्ति चाहती है, उसी प्रकार तुम्हारे प्रेम पर आघात करते हुए भी मेरा विद्रोह पुकारता है -मैं तुम्हें केवल तुम्हें चाहता हूँ।

[३९]

हृदय जब सूख कर कठोर हो जाय, उस समय तुम करुणा धारा बनकर आओ।

जीवन से जब माधुरी का लोप हो जाय तब तुम गीत के उद्गार बनकर आओ।

प्रबल आकार धारण कर कर्म जब मुझे चारों ओर से गरजते हुए आच्छादित करले उस समय, हे नीरव नाथ ! सुख और शांति लिए मेरे हृदय में आओ।

मेरा दीन हीन मन जब एक कोने में संकुचित पड़ा रहे, उस समय हे राजन् ! द्वार तोड़कर राजसमारोह के साथ आओ।

वासना जब अपार धूलराशि और माया से मन को अन्धा कर दे उस समय हे पवित्र, हे अनिद्र ! अपने रुद्र आलोक में प्रगट होओ।

[४०]

हे प्रभु, मेरा शुष्क मरु हृदय बहुत दिनों से सूखा पड़ा है। क्षितिज भीषण रूप से अनावृत है—कोमल मेघ का नाम मात्र आवरण नहीं है। भविष्य में शीतल वर्षा का कोई भी चिह्न नहीं है।

अपनी मरण गंभीर, रौद्र झंझानिल को भेजो, और तड़ित् आघात से आकाश के ओर छोर प्रकम्पित कर दो।

परन्तु हे प्रभु ! इस व्यापक निस्पन्द ताप को हटाओ; निर्मम, निश्चल, प्रबल निराशा से हृदय को उत्तप्त करने वाली इस उष्णता को दूर करो।

पिता के क्रोध के समय माता की अश्रुमय दृष्टि के समान आकाश से मेघ माधुरी अवतरित होने दो।

[४१]

हे प्रियतम ! छाया में छिपे सबके पीछे तुम कहाँ खड़े हो ? धूल भरे मार्ग पर नगण्य समझ कर वे तुम्हें धकियाते आगे बढ़

जाते हैं। मैं घंटों से अपनी भेंट लिये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। पथिक आते हैं और एक एक कर मेरे फूल ले जाते हैं और मेरी टोकरी खाली सी हो गई है।

प्रातःकाल और मध्याह्न बीत चुके हैं। सांध्य छाया में मेरी आँखें निद्रालु हो रही हैं। घर लौटते लोग मेरी ओर कटाक्षपात कर मुसकराते हैं और मैं लाज में भर जाती हूँ। अपने मुख पर घूँघट डाले मैं भिखारिणी सी बैठी हूँ, और वे जब पूछते हैं कि मैं क्या चाहती हूँ, तो मैं निरुत्तर आँखें झुका लेती हूँ।

हाय! उनसे कैसे कहूँ कि मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में हूँ, और तुमने आने को कहा था। मैं लाज के मारे यह कैसे कहूँ कि मेरा यौतुक यह दरिद्रता है। हाय, मैं मान को अपने हृदय में चिपटाये बैठी हूँ।

घास पर बैठी आकाश की ओर आँख गड़ाये मैं तुम्हारे आगमन के आकस्मिक आलोक की स्वप्निल प्रतीक्षा में हूँ। समस्त दीपक आलोकित हैं, सुनहरी पताका रथ पर फहरा रही है, और मार्ग के लोग यह देखकर आश्चर्य चकित हैं कि तुम रथ पर से उतर कर लज्जा तथा मान से कम्पितगात्र इस भिक्षुणी को धूल में से ऐसे उठा रहे हो जैसे वसन्त वायु वनलता को उठाता है।

परन्तु समय बीतता जाता है, और तुम्हारे रथ के पहियों का शब्द अब भी नहीं सुनाई देता। विजय ध्वनि के कोलाहल के साथ कितने ही जययात्री चले जाते हैं। क्या तुम ही छाया में छिपे सबके पीछे खड़े रहोगे? और केवल मैं रोता रहूँगी और निराशा में अपना हृदय क्षीण करती रहूँगी?

[४२]

तड़के ही यह चुपचाप निश्चय हुआ था कि हम और तुम एक नौका में चलेंगे। त्रिभुवन में कोई नहीं जानेगा कि हम किस देश को—किस दिशा की यात्रा को जा रहे हैं।

उस कूलहीन सागर के बीच, अकेले, स्वर्णिम तरंगों की भाँति, भाषा के बन्धन से मुक्त मेरी रागिनी को तुम नीरव-हास लिये सुनते होगे।

वह समय क्या अब भी नहीं आया? क्या अभी भी कुछ काम रह गये हैं? वह देखो! संध्या समुद्रतीर पर अवतरित हो रही है, धूमिल प्रकाश में समुद्रपार के पक्षी अपने-अपने नीड़ों में आ गये हैं।

जाने कब नौका के बन्धन खुल जायँ, और अस्तंगत सूर्य की अन्तिम झिलमिलाहट के समान रात्रि में नौका कब विलीन हो जाय!

[४३]

एक दिन था जब मैं तुम्हारे लिए तैयार न था; और एक सामान्यजन की भाँति बिना बुलाए मेरे हृदय में प्रवेश कर, मेरे सम्राट, तुमने मेरे जीवन के कितने ही अनित्य क्षणों पर नित्यता की छाप अङ्कित कर दी।

और आज संयोग से जब उन पर मेरी दृष्टि पड़ती है, और उन पर तेरे हस्ताक्षर देखता हूँ, तो पता चलता है कि वे मेरे तुच्छ विस्मृत दिनों के हर्ष-विषाद में मिले हुए धूल में बिखरे पड़े हैं।

मेरे बचपन के धूल के खेल से तुमने घृणा से मुँह नहीं फेरा, और मैंने अपने क्रीड़ा-स्थल में जो तुम्हारे चरण-चाप सुने थे वे ही नक्षत्रों में प्रतिध्वनित हो रहे हैं।

[४४]

सड़क के किनारे जहाँ छाया प्रकाश के पीछे भागती है, और ग्रीष्म के बाद वर्षा आती है, तेरी प्रतीक्षा में रुके रहने में मुझे आनन्द आता है।

अज्ञात भुवन के सन्देश वाहक मेरा अभिवादन कर अपने मार्ग पर बढ़ जाते हैं। मेरा हृदय भीतर ही भीतर आनन्दित है, और बहती वायु के निःश्वास मधुर हैं।

उषःकाल से गोधूलिबेला तक मैं अपने द्वार पर बैठा रहता हूँ, और मुझे ज्ञात है कि अकस्मात् उस आनन्द मुहूर्त का आगमन होगा जब मुझे दर्शन होंगे।

इसी बीच मैं बिलकुल अकेला मुसकराता और गाता हूँ। इसी बीच पवन आशा की सुगंधि से भर उठता है।

[४५]

तुमने उसके नीरव चरण-चाप नहीं सुने ?

वह आ रहा है, आ रहा है, वह नित्य आता रहता है।

युग-युग, पल-पल दिवा निशि वह आता है।

आता है और नित्य आता है।

भिन्न-भिन्न मनोदशा में मैंने कितने ही गीत गाए हैं, पर उन सबके स्वरों में यह आगमनी ध्वनित हुई है "वह आ रहा है, आ रहा है, नित्य आता रहता है।"

फाल्गुन के मधुर गन्ध भरे दिनों में वनमार्ग से वह आ रहा है, आ रहा है, नित्य आता है।

श्रावण के घन-अन्धकार भरे दिनों में मेघों के रथ पर चढ़कर वह आता है, आता है, नित्य आता है।

दुःख के पश्चात् परम दुःख में उसके ही चरण मेरे हृदय पर विराजमान रहते हैं, और वे पारसमणि बनकर मेरे मन के हर्ष को विकसित कर देते हैं।

[४६]

न मालूम किस काल से तुम मुझसे मिलने सदा मेरे समीप आ रहे हो। तुम्हारे चन्द्र सूर्य तुम्हें मुझसे छिपाकर अनन्त काल तक नहीं रख सकते।

कितनी ही प्रातः और सांध्य बेला में तुम्हारे चरण-चाप सुनाई पड़े हैं, और तुम्हारा दूत छिपकर मेरे हृदय में संदेशा कह गया है।

आज मेरे प्राण न मालूम क्यों चंचल हो रहे हैं और हृदय में हर्ष का कम्पन हो रहा है।

ऐसा ज्ञात होता है कि आज समय आ गया है, मेरा सब काम समाप्त हो गया है, और पवन में तुम्हारी मन्द मधुर गन्ध व्याप्त है।

[४७]

उसकी असफल प्रतीक्षा करते करते रात प्रायः बीत गयी है। कहीं ऐसा न हो कि जब मैं प्रातःकाल थक कर सो जाऊँ तो वह अकस्मात् मेरे द्वार पर आ जाये। बन्धु, उसका मार्ग छोड़ दो— उसे रोकना मत!

यदि उसकी चरण चाप से मेरी नींद न खुले तो कृपा कर मुझे जगाने की चेष्टा न करना। मैं उषा लोक के महोत्सव के समय पक्षियों की कलरव ध्वनि और पवन के कोलाहल से अपनी निद्रा नहीं छोड़ना चाहता। यदि मेरे प्रभु भी अकस्मात् मेरे द्वार पर आ जायें तो भी मुझे शांतिपूर्वक सोने देना।

मेरी निद्रा! मेरी निधि—वह तो केवल उसके स्पर्श से विलीन होने की प्रतीक्षा में है। मेरे निमीलित नयन!—वे उसकी स्मिति के प्रकाश में अपने पलक तभी खोलेंगे जब वह निद्रा के अन्धकार से निर्गत स्वप्न की भाँति मेरे आगे खड़ा होगा।

समस्त ज्योति और आकारों में अग्रणी की भाँति वह मेरे दृष्टि पट पर आये। मेरी जाग्रत आत्मा का प्रथम आनन्दातिरेक उसके कटाक्ष से आविर्भूत हो, और मेरा प्रत्यावर्तन उनमें तात्कालिक सन्निवश हो।

[४८]

प्रभात कालीन मौन सागर पक्षियों के कलकल गान की तरङ्गों में फूट निकला और पथ पर के पुष्प प्रफुल्लित थे; मेघों के अवार से स्वर्णिम स्वनराशि बिखरी पड़ी थी—ऐसे समय हम किसी ओर ध्यान न देकर अपने मार्ग पर व्यस्त बढ़ते गये।

हमने आनन्द गान नहीं किये और न खेले, हम गाँव में सौदा करने नहीं गये। न तो एक शब्द उच्चारण किया और न हँसे, हम मार्ग में रुके नहीं। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता था, हम अपनी गति द्रुततर करते जाते थे।

सूर्य आकाश में बीचोबीच आ गया और कोकिल छाया में कूजने लगे। मध्याह्न की नम्र वायु में सूखी पत्तियाँ नाचतीं और चक्कर खाती थीं। गोप-बालक वट वृक्ष की छाया में झपकी लेता स्वप्न देख रहा था; मैंने जलाशय के समीप लेट कर अपने श्रान्त अङ्गों को हरित तृण भूमि पर फैला दिया।

मेरे साथी घृणा से मुझ पर हँसे; वे अपना सिर उठाये द्रुतगति से बढ़ गये। उन्होंने न तो पीछे फिर कर देखा और न विश्राम किया, दूरस्थ नीलांधकार में वे ओझल हो गये। उन्होंने कितने ही मैदान और पर्वतों को पार किया और विचित्र-विचित्र

दूर देशों से होकर गये। अनन्त पथ के वीर यात्रियो! तुम धन्य हो! उपहास और प्रतारणा ने मुझे उठने को बाध्य किया पर मुझमें कोई प्रतिक्रिया न थी। मैंने क्षीण आनन्द की छाया में आनन्द-हीनता के गांभीर्य में अपने को निमग्न कर दिया।

रविरश्मियों से सज्जित हरीतिमा की छाया का आनन्द मेरे हृदय पर शनैः शनै छा गया। अपनी यात्रा का उद्देश्य मैं भूल गया। छाया और गान के जाल में मैंने बिना प्रतिरोध के अपने को समर्पित कर दिया।

अन्त में जब मैं नींद से उठा और आँखें खोलीं, तो मैंने तुम्हें अपनी स्मित से नींद को आच्छादित करके अपने समीप खड़ा पाया। मैं कितना डर रहा था कि मार्ग श्रमपूर्ण और लम्बा है और तुम्हारे समीप पहुँचने में कठिन संघर्ष करना है।

[४९]

तुम अपने सिंहासन से उतर आये और मेरी कुटिया के द्वार पर आकर खड़े हो गये।

मैं एक कोने में नितान्त एकाकी बैठा गा रहा था, और सङ्गीत ध्वनि तुम्हारे कर्णगत हुई। तुम आकर मेरी कुटिया के द्वार पर खड़े हो गये।

तुम्हारी सभा में अनेक गुणी हैं, और वहाँ सदा ही गान होते रहते हैं। परन्तु इस गुणहीन का गान आज तुम्हारा प्रेम संगीत हो बज उठा। एक करुण क्षीण स्वर विश्व के महान् संगीत में मिल गया। पारितोषिक रूप में तुम एक पुष्प लिये उतरे और मेरी कुटिया के द्वार पर ठहर गये।

[५०]

मैं ग्राम-मार्ग पर द्वार द्वार भीख माँगने गया था जब कि तुम्हारा स्वर्णिम रथ झलमलाते स्वप्न की भाँति दूर पर दिखाई दिया, और मैं इस विस्मय में पड़ गया कि यह राजाधिराज कौन है!

मेरी आशायें ऊपर उठीं और मैंने सोचा कि मेरे बुरे दिनों का अन्त आ पहुँचा है, अयाचित भिक्षा प्राप्ति और चहुँ ओर धन की बिखेर की प्रतीक्षा में मैं खड़ा सो गया।

जिस स्थान पर मैं खड़ा था वहाँ आकर रथ रुक गया। तुम्हारी दृष्टि मुझ पर पड़ी और तुम सस्मित मेरे पास आये। मुझे मालूम पड़ा कि अन्त में मेरे जीवन का भाग्योदय हो गया। तब सहसा तुमने अपना दाहिना हाथ बढ़ा कर कहा, "मुझे देने के लिये तेरे पास क्या है?"

हाय, भिखारी के आगे भिक्षा के लिये हाथ पसारने का यह कैसा राजसी उपहास है! मैं अनिश्चित दशा में हतबुद्धि सा खड़ा रह गया; और तब झोली में से अन्न का कण धीरे से निकाल कर तुम्हें दे दिया।

परन्तु मुझे कितना आश्चर्य हुआ जब दिन के अन्त में मैंने झोली उलट कर देखा कि छोटी सी ढेरी में एक नन्हा सा सोने का दाना है। मैं फूट फूट कर रोने लगा और इच्छा हुई कि तुम्हें सब कुछ दे डालने का साहस मुझमें होता।

[५१]

रात अँधियारी हो गयी। हमारे दिन के काम समाप्त हो चुके थे। हमने सोचा कि रात्रि का अन्तिम अतिथि आ चुका और गाँव के सब द्वार बन्द हो गये। किसी ने कहा, "महाराज आने वाले हैं।" हम हँसे, "नहीं, यह नहीं हो सकता।"

द्वार पर थपथपाहट मालूम पड़ी और हमने कहा कि यह हवा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। दीपक बुझा कर हम सोने चले गये। किसी ने कहा, "यह दूत है।" हमने हँस कर कहा, "नहीं, यह पवन ही है।"

आधी रात को कुछ शब्द हुआ। नींद के झोंके में उसे दूर के बादलों की गरज समझा। पृथ्वी कँपी, दीवारें हिलीं और इससे हमारी नींद में विघ्न पड़ा। किसी ने कहा, "यह पहियों का शब्द है।" हम ऊंघते हुए बड़बड़ाये, "नहीं यह मेघों की गरज है।"

अभी रात अँधेरी ही थी जब नगाड़ा बज उठा। "जागो, विलम्ब न करो।"—की ध्वनि हुई। हमने अपने हाथ कलेजे पर रखे और भय से काँप उठे। किसी ने कहा, "वह राजा की ध्वजा है।" हम खड़े हो गये और बोले, "अब विलम्ब करने का अवसर नहीं है।"

महाराज आ पहुँचे—पर आरती और माला कहाँ है? उन्हें विठाने के लिये सिंहासन कहाँ है? धिक्कार है धिक्कार! भवन और साज सज्जा कहाँ है? किसी ने कहा, "रोने चिल्लाने से क्या लाभ? उनका खाली हाथों अभिवादन करो। उन्हें अपने सूने घर में ले जाओ।"

द्वार खोल दो और शङ्ख बजाओ! रात्रि के गांभीर्य में हमारे सूने और अँधियारे घर का राजा आया है। आकाश में वज्र गरज रहे हैं। अंधकार बिजली की कौंध से कांप उठता है। अपने फटे आसन के टुकड़े को ला कर आँगन में बिछा दो। झंझा के साथ भयानक रात्रि का राजा आया है।

[५२]

मैंने सोचा मैं तुम्हारे गले में पड़े गुलाब की माला माँगूँ—पर मेरा साहस न पड़ा। मैं प्रातःकाल की प्रतीक्षा में रही जब तुम्हारे चले जाने पर शैया पर कुछ टुकड़े मिल जाँय और तड़के ही मैंने भिक्षुक की भाँति एक पंखुड़ी की खोज की।

अरे यह मुझे क्या मिल गया? तुम्हारे प्रेम का यह कैसा चिह्न है? यह न तो फूल है, न गन्ध, और न सुगन्धि-जल-पात्र। यह तो वज्र के तुल्य भारी, अग्नि-शिखा सी देदीप्यमान तुम्हारी भीषण कृपाण है। गवाक्ष से उषः आलोक आकर तुम्हारी शय्या पर फैल जाता है। प्रातःकालीन पक्षी चहचहा कर प्रश्न करता है, "रमणी तुझे क्या मिला?" न, यह पुष्प नहीं है, न सुगन्धि और न सुगन्धि-जल-पात्र—यह तो तुम्हारी भयङ्कर कृपाण है।

मैं विस्मित बैठी सोचती हूँ यह तुम्हारा कैसा उपहार है। इसे छिपाने को मुझे कहीं स्थान नहीं मिलता। अपनी लाज के कारण मैं इसे धारण नहीं कर सकती और जब मैं इसे हृदय से लगाती हूँ तो मुझे पीड़ा होती है। तथापि मैं वेदना भार के इस सम्मान को—तुम्हारे उपहार को—अपने हृदय में धारण किये रहूँगी।

अब से संसार में मेरे लिये कोई भय नहीं है और मेरे समस्त संघर्षों में तुम विजयी होगे। मृत्यु को तुमने मेरी सहचरी बनाया है और मैं जीवन से उसे अभिषिक्त करूँगी। मेरे बन्धन छिन्न करने के हेतु मेरे पास तुम्हारी कृपाण है, और अब संसार में मुझे भय नहीं रहा।

अब से मैं समस्त तुच्छ अलङ्कारों को विसर्जित करती हूँ। मेरे हृदय देव, अब मेरे लिये प्रतीक्षा और रुदन का अन्त है, अब संकोच और व्यावहारिकता न रहेगी। तुमने मुझे शृङ्गार के लिये अपनी कृपाण दी है। अब गुड़ियों के अलङ्करण की आवश्यकता नहीं रही।

[५३]

नक्षत्रों से खचित और रंग विरंगे रत्नों से चतुरतापूर्वक जटित तुम्हारा कंकण कैसा सुन्दर है। परन्तु, गरुड़ के फैले पंखों के समान वंकिमता लिये तड़ित् के समान और सूर्य की क्रुद्ध रक्ताभा में पूर्णतया सधी तुम्हारी कृपाण अधिक मनोहर है।

काल के अन्तिम प्रहार की वेदना के अतिरेक में यह जीवन के अन्तिम श्वास सी कम्पित होती है। यह उस शक्ति को पवित्र

अग्नि-शिखा के समान चमकती है जो पार्थिव भावनाओं को एक भीषण चमक से भस्म करती है।

नक्षत्रों से खचित तुम्हारा कंकण सुन्दर है परन्तु हे वज्रपाणि, तुम्हारी कृपाण दीप्ति सौन्दर्य से रचित है। उसके दर्शन या विचार मात्र से भय होता है।

[५४]

मैंने तुमसे कुछ नहीं पूछा, मैंने तुम्हारे कानों में अपना नामोच्चारण नहीं किया जब तुमने बिदा ली तो मैं मौन खड़ी रही। मैं उस कूप के पास अकेली थी जहाँ वृक्ष की छाया तिर्यक पड़ रही थी और स्त्रियाँ अपने भरे गेरुए घड़े लेकर घर चली गयी थीं। उन्होंने मुझे पुकार कर कहा, "चलो, दुपहरिया हो रही है।" परन्तु मैं अस्पष्ट विचारों में खोई अलसाई रुकी रही।

तुम्हारे आगमन पर तुम्हारी पगध्वनि मैंने नहीं सुनी। तुम्हारी आँखें जब मुझपर पड़ीं तो उदास थीं; जब तुमने धीमे से कहा, "मैं प्यासा पथिक हूँ।" तो तुम्हारा कण्ठ थका था। यह सुन कर मैं दिवा-स्वप्न से चौंक पड़ी और अपने घर से तुम्हारी अँजुली में जल उँड़ेला। ऊपर पत्तियाँ मर्मर कर रही थीं, अदृष्ट अन्धकार

से कोकिल गान कर उठा, और पथ के मोड़ से बबूल के फूलों की सुगन्धि आयी।

जब तुमने मेरा नाम पूछा तो मैं लज्जावनत मौन खड़ी रही। मैंने किया ही क्या है जो तुम मुझे स्मरण रखो। पर यह स्मृति कि तुम्हारी तृषा शान्त करने के लिये मैं जल दे सकी मेरे हृदय से संलग्न रहेगी और उसे माधुर्य में संश्लिष्ट रखेगी। प्रातःकाल ढल चुका, पक्षी क्लान्त स्वर में गान कर रहे हैं, ऊपर नीम की पत्तियाँ मर्मर करती हैं और मैं बैठी सोचती ही रहती हूँ।

[५५]

तुम्हारा हृदय अलसाया हुआ है और तुम्हारे नेत्रों पर नींद अभी तक छायी है। क्या यह सम्वाद तुम्हें नहीं मिला कि फूल वैभव के साथ कण्टकों में राज्य कर रहा है। जाग, अरे जाग! समय व्यर्थ न गँवा!

पथरीले मार्ग के अन्त में, नितान्त विजन प्रदेश में मेरा मित्र बिलकुल अकेला बैठा है। उसे प्रवञ्चित न कर। जाग, अरे जाग!

यदि मध्याह्न रवि के ताप से आकाश उच्छ्वसित एवं कम्पित होता है तो क्या हुआ—यदि उत्तप्त बालुका तृषा का अञ्चल फैला दे तो क्या हुआ—

तुम्हारे हृदय के अन्तस् में क्या हर्ष नहीं है ? तुम्हारी प्रति चरण ध्वनि पर मार्ग वीणा क्या वेदना के मधुर संगीत में नहीं बज उठेगी ?

[५६]

यही कारण है कि मुझमें तुम्हें इतना अधिक आनन्द आता है। इसी कारण तुम मेरे पास आये हो। हे त्रिभुवनेश्वर, मेरे अभाव में तुम्हारा प्रेम व्यर्थ ही होता।

इस सब निधि का संगी तुमने मुझे चुना है। मेरे हृदय में तुम्हारे आनन्द की अनन्त क्रीड़ा चलती है। मेरे जीवन से ही तुम्हारी इच्छायें नाना रूप में व्यक्त होती हैं।

इसी हेतु हे राजाधिराज, मेरा मन मुग्ध करने के लिये तुमने मनोहर वेष धारण किया है; और इसी हेतु तुम्हारा प्रेम तुम्हारे भक्त के प्रेम में लीन हो जाता है और वहाँ तुम्हारी मूर्ति दोनों के पूर्ण मिलन में प्रगट होती है।

[५७]

प्रकाश, प्रियप्रकाश, भुवन व्यापी प्रकाश, नयन चुम्बी प्रकाश, मन मधुरकारी प्रकाश !

प्रियतम, प्रकाश मेरे जीवन के केन्द्र पर लास्य करता है; प्रियतम. प्रकाश मेरे प्रेम तार पर झंकार देता है, आकाश निर्मल है, वायु प्रबल वेग से बह रही है, हर्ष धरातल पर छा जाता है।

प्रकाश के सागर पर तितलियाँ अपने पाल फैलाती हैं। प्रकाश की तरंगों के सिरों पर पद्म और मल्लिका हिलोरें लेते हैं।

हे प्रियतम, प्रकाश प्रत्येक मेघ पर सोने के समान बिखर रहा है और वह रत्नों का बाहुल्य बिखेरा करता है।

मेरे प्रियतम, पत्ते पत्ते पर उल्लास और हर्ष अनन्त राशि में फैल रहे हैं। आनन्द की बाढ़ उमड़ रही है और आकाश गङ्गा के कूल डूब गये हैं।

[५८]

आनन्द के समस्त स्वर मेरे अन्तिम गान में आकर मिल जाँय—वह आनन्द जिससे प्रेरित धरा हरीतिमा के बाहुल्य में बह निकलती है, वह आनन्द जीवन-मृत्यु रूपी भ्रातृद्वय को विस्तृत विश्व में नृत्य करने में प्रेरक है, वह आनन्द जो झंझानिल के रूप में आता और सुषुप्त प्राणों को अट्टहास से झकझोर कर जाग्रत करता है, वह आनन्द जो दुःख और व्यथा के रक्त कमल पर आँसू

के समान स्थित रहता है और वह आनन्द जो सब कुछ धूल में फेक देने पर चूँ तक नहीं करता।

[५९]

हे हृदय हरण, मुझे मालूम है कि यह तुम्हारा प्रेम ही है। यह स्वर्णिम आलोक पर जो थिरक रहा है, यह आकाश व्यापी मधुर अलस मेघ, यह पवन जो शरीर पर अमृत वर्षा करता है—यह सब तुम्हारा प्रेम ही है।

प्रभात कालीन आलोक मेरे नेत्रों में भर गया है—मेरे हृदय के लिये यह तुम्हारा प्रेम सन्देश है। तुम्हारा मुख मेरे मुख पर झुका है. तुम्हारे नेत्र मेरे नेत्रों पर लगे हैं और मेरा हृदय तुम्हारा कर स्पर्श कर रहा है।

[६०]

अपार संसार के समुद्र तट पर बालक एकत्र होते हैं। ऊपर आकाश गति हीन है और चंचल जल प्रचंड हो रहा है। अनन्त विश्व के सागर तट पर बालक नाचते और कोलाहल करते एकत्र हो रहे हैं।

वे बालू के घर बनाते हैं और खोखली सीपों से खेलते हैं। वे सूखे पत्तों की नौका बनाते हैं। और मुसकराते हुए असीम सागर में छोड़ देते हैं। बालक संसार के सागर तट पर खेलते हैं।

वे तैरना नहीं जानते, जाल फेंकना नहीं जानते। पनडुब्बे मोतियों के लिये डुबकी लगाते हैं, व्यापारी अपने पोत में यात्रा करते हैं जब बालक कंकड़ जमा कर फिर बिखेर देते हैं। वे गुप्त नहीं ढूँढ़ते, वे जाल डालना नहीं जानते।

समुद्र हँसी से उमड़ा चला आता है और सागर तट की पीत वर्ण स्मिति चमकती है। मृत्यु वाही तरंगें बालकों को अर्थ हीन संगीत सुनाती है उसी भाँति जैसे माता अपने शिशु को हिंडोले में झुलाती है। सागर बच्चों से खेलता है और समुद्र तट की पीत वर्ण स्मिति चमकती है।

अपार संसार के सागर-तट पर बालक एकत्रित होते हैं। पथ हीन गगन में झंझानिल बहती है। चिह्न-रहित सागर में पोत नष्ट होते हैं मृत्यु निर्बन्ध विचरण कर रही है और बालक खेल रहे हैं। अनन्त विश्व के सागर तट पर बालकों का मेला है।

[६१]

कोई जानता है कि शिशु के नेत्रों पर थिरकने वाली नींद कहाँ

से आती है ? हाँ, प्रसिद्ध है कि उसका वास वहाँ है जहाँ जुगनुओं के मन्द प्रकाश से आलोकित वन की छाया में अवस्थित परियों के गाँव में है, वहाँ दो सुकुमार मोहक कलियाँ लटकती हैं। वहाँ से वे बालकों के नेत्रों का चुम्बन लेने आती हैं।

कोई जानता है कि शिशु के ओठों पर झलकने वाली मुसकराहट का जन्म कहाँ हुआ ? हाँ लोक श्रुति है कि द्वितीया के चन्द्रमा की एक पीत किरण विलीयमान शरद् मेघ की कोर से छू गयी और तब तुहिन धौत प्रभात के स्वप्न में उस स्मिति का प्रथम जन्म हुआ—वह स्मिति जो सोते समय शिशु के ओठों पर झलकती है।

कोई जानता है कि वह मनोहर मृदुल लावण्य जो शिशु के अंगों में विकसित होता है अभी तक कहाँ छिपा था ? हाँ, माता जब किशोरी थी तब वह प्रेम के कोमल मौन रहस्य में उसके हृदय पर व्याप्त था—

वह मनोहर, मृदुल, लावण्य जो शिशु के अंगों में विकसित हुआ है।

[६२]

मेरे बच्चे, जब मैं तेरे लिये रंगीन खिलौने लाता हूँ, तो मेरी समझ में आता है कि मेघों में, जल पर रंगों की झलमलाहट

क्यों है और फूल ऐसे कोमल रंगों से क्यों चित्रित हैं– मेरे बच्चे जब मैं तुझे रंग बिरंगे खिलौने देता हूँ।

जब मैं तुम्हें नचाने के लिये गाता हूँ तो मैं सचमुच समझता हूँ कि पत्तियों में इतना संगीत क्यों है, और उत्कर्ण धरित्री के हृदय को तरंगे सामूहिक-स्वर-संगीत से क्यों तरंगित करती हैं।— जब मैं तुम्हें नचाने के लिये गाता हूँ।

जब मैं तुम्हारे ललचाये हाथों पर मिठाई रखता हूँ तो मैं जानता हूँ कि पुष्प चषक मे मधु क्यों है और फलों में मधुर रस क्यों छिपा है—जब मैं तुम्हारे उत्सुक हाथों पर मिठाई रखता हूँ।

तुम्हें हँसाने के लिये जब मैं तुम्हारा मुख चूमता हूँ तो प्यारे बच्चे मैं उस सुख को भली भाँति समझता हूँ जो प्रातःकालीन प्रकाश में आकाश से तरंगित होता है और वह कैसा आनन्द है जो बासंती वायु से मेरे शरीर को मिलता है—तुम्हें हँसाने के लिये जब मैं तुम्हारा चुम्बन लेता हूँ।

[६३]

तुमने कितने मित्रों से मेरा परिचय कराया जिन्हें मैं नहीं जानता था। तुमने कितने ऐसे घरों में मुझे स्थान दिलाया जो

मेरे नहीं हैं। तुमने दूरवर्तियों को निकटस्थ और बिगानों को भाई बना दिया।

जब मुझे पुराना आवास छोड़ना होता है तो मैं बेचैन हो जाता हूँ; मैं यह भूल जाता हूँ कि नूतन में पुरातन का आवास है और वहाँ भी तुम हो।

जीवन, मरण, निखिलभुवन— जहाँ कहीं भी तुम ले चलो वहाँ अपरिचितों से आनन्द के बन्धनों द्वारा मेरे हृदय को मिलाने वाले तुम ही मेरे अनन्त जीवन के संगी हो।

तुम्हें जान लेने पर कोई बेगाना नहीं रह जाता, कोई द्वार बन्द नहीं रहता। हे नाथ यह प्रार्थना स्वीकार करो कि मैं उस वरदान का आश्रय कभी न खो दूँ जो सबको मिलता रहता है।

[६४]

निर्जन नदी तट पर वानीर वन में मैंने प्रश्न किया, "सुकुमारि दीपक को अंचल की ओट किये तुम कहाँ जा रही हो ? मेरा घर बिलकुल अंधेरा और सूना है—अपना दीपक मुझे दे दो !"

उसने अँधकार में अपने सघन नेत्रों से पल भर मेरी ओर देखा और बोली, "सूर्यास्त के पश्चात् मैं इस दीपक को नदी में प्रवाहित करने जा रही हूँ।"

वानीरों में अकेले खड़े मैंने उसके दीपक की तरल शिखा को धारा में निष्प्रयोजन बहते देखा।

निशावतरण की नीरवता में मैंने उससे पूछा, "सुकुमारि, तुम्हारे सब दीपक प्रदीप्त हो चुके—फिर तुम अपना दीप लिए कहाँ जा रही हो? मेरा घर बिलकुल अँधेरा और सूना है—अपना दीपक मुझे दे दो।" वह अपने सघन नेत्र मेरी ओर उठा पल भर ससंभ्रम खड़ी रही। अन्त में उसने उत्तर दिया, "मैं आकाश-दीप दान करने आयी हूँ।" मैं खड़ा देखता रहा कि उसका दीपक शून्य में व्यर्थ ही जल रहा है।

अर्धरात्रि के ज्योत्स्ना विहीन अन्धकार में मैंने उससे प्रश्न किया, "सुकुमारि, दीपक को हृदय से लगाये तुम किसे खोज रही हो? मेरा घर बिलकुल अँधेरा और सूनसान है—अपना दीप मुझे दे दो।" वह पल भर ठहर कर सोचने लगी, फिर अँधेरे में मेरे मुख की ओर देखा। उसने कहा, "मैं अपने दीपक को दीपावली में लगाने के लिये लायी हूँ।" मैं खड़ा खड़ा उसके छोटे से दीपक को अन्य दीपों में व्यर्थ होते देखता रहा।

[६५]

मेरे देवता, इस जीवन के पात्र में कौन सा अमृत पान करना चाहते हो?

हे कवि, क्या मेरे नेत्रों से विश्व की शोभा निरखने की तुम्हारी साध है - मेरे मुग्ध कर्ण कुहरों में नीरव भाव से क्या अपना ही संगीत सुनना चाहते हो?

तुम्हारी सृष्टि मेरे चित्त में स्वर संयोग करती है और तुम्हारी प्रसन्नता से उसमें सङ्गीत का समावेश हो जाता है। प्रेमवश अपने को दान कर तुम अपना माधुर्य मुझमें देखते हो।

[६६]

जो चिर दिन मेरे अन्तरतम में रही, जो प्रभात के आलोक में प्रस्फुटित नहीं हुई, हे देवता, उसे मैं अपने जीवन के अन्तिम गीत द्वारा जीवन की अन्तिम भेंट के रूप में समर्पित करूँगा।

शब्दों का अन्त हो गया पर उसकी रचना न हो सकी; कल्पना उसके चिन्तन में व्यर्थ तल्लीन रही।

उसे अपने अन्तःकरण में लिये मैं देश देश घूमा, जीवन में जो कुछ उत्थान पतन होता रहा सब उसके ही चारों ओर रहा। मेरे मन और कर्म में, शयन और स्वप्न में रहने पर भी वह अलग और अकेली रही।

कितने ही लोगों ने उसके लिये मेरा द्वार खटखटाया और निराश लौट गये।

संसार में किसी ने उसे प्रत्यक्ष नहीं देखा और वह तुम्हारे परिचय की आशा लिये एकान्त में बैठी रही।

[६७]

तुम आकाश हो और तुम ही नीड़ हो।

हे सुन्दर, नीड़ में तुम्हारा प्रेम ही आत्मा को वर्ण, शब्द और गन्ध से परिवेष्ठित किये है।

उषा अपने दाहिने हाथ के स्वर्णथाल में सौन्दर्यमाल लिये धरित्री का तिलक करने मौन चली आ रही है।

और पश्चिमी विश्रान्ति सागर से अपने स्वर्ण-घाट में शान्ति की शीतल पवन भरे संध्या पशुओं से रहित सूनसान मैदानों पर चिह्न हीन मार्गों से अवतरित होती है।

परन्तु उस स्थान पर जहाँ असीम आकाश आत्मा की उड़ान के लिये विस्तृत है, निर्मल शुभ्र दीप्ति विराजती है। वहाँ न दिन है न रात, न रूप और न रंग, और कहीं एक शब्द भी नहीं।

[६८]

तुम्हारी सूर्य रश्मि बाँह पसारे मेरी इस धरती पर आकर सारे दिन मेरे द्वार पर मेरे अश्रु, निश्वास और गीतों के मेघों को तुम्हारे चरणों में ले जाने के लिये खड़ी रहती है।

परम आह्लाद से तुम नक्षत्र खचित वक्ष पर धुँधले मेघों का आवरण लपेटे हो, उसे असंख्य आकार और स्तर में परिवर्तित करते हो और नित्य परिवर्तनशील रंगों में रँगते हो।

हे निरंजन, हे धीर, तुम उन्हें इसीलिये प्यार करते हो कि वे बड़े हल्के, चपल, कोमल, मलिन, और सघन हैं। और यही कारण है कि वह तुम्हारी प्रतापी शुभ्र दीप्ति को अपनी कारुणिक छाया से ढकने में समर्थ है।

[६९]

जीवन की जो धारा मेरी शिराओं में दिन रात प्रवाहित होती रहती है, संसार में बहती है और ताल स्वर से नाचती है।

यह वही जीवन है जो पृथ्वी पर धूलि में असंख्य तृणों के रूप में उल्लास फूट पड़ता है और फूल पत्तियों की कोलाहलपूर्ण तरंगों में बह निकलता है।

यह वही जीवन है जो जीवन-मरण सागर रूपी झूले के ज्वार भाटे में झूलता रहता है।

मुझे जान पड़ता है कि इस जीवन जग के स्पर्श से मेरे अंग प्रभापूर्ण हो उठते हैं। और मेरा अभिमान युग युग के जीवन

स्पन्दन से निःसृत है जो इस क्षण में भी मेरे रक्त में नृत्य कर रहा है।

[७०]

इस छन्द के उल्लास से क्या तुम उल्लसित हो सकोगे? इस नष्ट होने के आनन्द की भँवर में उछल, डूब और टूट सकोगे?

सब चीज़ें बढ़ती जा रही हैं, वे रुकती नहीं, घूम कर नहीं देखतीं, उन्हें कोई शक्ति रोक नहीं सकती। वे बढ़ती जा रही हैं।

उस चंचल द्रुत संगीत के साथ ऋतु नृत्य करती आती और चली जाती हैं—वर्ण गीत, गन्ध उस उल्लास से आप्लावित हैं जो प्रतिक्षण विस्तृत होता मुक्त होता और शान्त हो जाता है।

[७१]

मैं अपने पर अभिमान करूँ और उसे सब ओर घुमा फिरा कर उसके चित्र विचित्र वर्ण से तुम्हारे प्रताप की छाया डालते फिरूँ—ऐसी तुम्हारी माया है। तुम स्वयं ही सीमाबद्ध रहते हो और अपने ही विच्छिन्न अंशों को असंख्य संज्ञाओं से प्रसिद्ध करते हो। तुम्हारा यह आत्म विच्छेद मेरे शरीर में अवतरित है।

तुम्हारा यह तंत्र गान विविध रंगों के आँसुओं, मुसकानों, विस्मय और आशा के रूप में आ आकाश में प्रतिध्वनित हो रहा है, तरंगें उठती और गिरती हैं; स्वप्न बिगड़ते और बनते हैं मुझमें ही तुम्हारी अपनी पराजय निहित है।

तुम्हारे खड़े किये इस फलक पर रात्रि दिवस रूपी तूलिका से असंख्य चित्र चित्रित हैं। उसके पीछे तुम्हारी पीठिका बंकिम रेखाओं के अद्भुत रहस्यों से बुनी है? उसमें से व्यर्थ की सब सीधी रेखाएँ अलग कर दी गयी हैं।

मेरे और तुम्हारे रमणीक दृश्य आकाश पर व्याप्त हैं। तुम्हारे और मेरे स्वर से वायु मंडल गूँज रहा है, और तुम्हारी और मेरी आँख मिचौनी में युग व्यतीत होते जाते हैं।

[७२]

यह वही हृदय है जो अपने गहन, गोपन स्पर्श से मेरी आत्मा को जाग्रत करता है।

यह वही है जो अपना मोहन मंत्र इन नेत्रों पर फूँकता है और मेरे हृदय के तारों पर सुख दुख के आरोह अवरोह सानन्द ध्वनित करता है।

यह वही है जो इस माया जाल को सुनहले, रुपहले हरे, नीले, नश्वर रंगों में बुनता है और जिन्हें अपने चरणों की सन्धि में से झलका देता है—वे चरण जिनके स्पर्श से मैं आत्म विस्मृत हो जाता हूँ।

दिन आते हैं और युग बीतते जाते हैं और सर्वदा वही रहता है जो मेरे हृदय को अनेक संज्ञा, रूप, हर्ष और विषाद के विभिन्न अतिरेक उद्विग्न करता है।

[७३]

त्याग में मेरी मुक्ति नहीं है। मैं आनन्द के सहस्रों बन्धन में स्वाधीनता संश्लिष्ट अनुभव करता हूँ।

तुम मेरे लिये इस मिट्टी के पात्र में नाना वर्ण और नाना गंध की नूतन मदिरा सदा ऊपर तक भर देते हो।

मेरा विश्व अपने सहस्रां दीपकों को तेरी ज्योति से पज्ज्वलित कर लेगा और तुम्हारे मन्दिर की वेदी पर समर्पित कर देगा।

न, मैं अपने इन्द्रिय-द्वार कदापि अवरुद्ध न करूँगा। रूप, शब्द और स्पर्श के आनन्द तुम्हारे आह्लाद के रूपान्तर होंगे।

हाँ, मेरे समस्त भ्रम आनन्द की ज्योति में भस्म हो जायँगे और मेरी समस्त कामनायें प्रेमरूपी फल में परिपक्व होंगी।

[७४]

दिन का अवसान हो गया, अँधियारा, धरती पर उतर आया। अब घाट पर गगरी भरने चलना चाहिये।

जल धार का करुण संगीत सांध्य पवन को आकुल कर रहा है। वह मुझे अँधेरे में बुला रही है। जन-हीन पथ पर कोई पथिक नहीं है, प्रेम नदी में पवन और तरंगों की बाढ़ है।

पता नहीं अब लौटना होगा या नहीं। क्या जाने किससे भेंट हो जाय। घाट पर नैया में बैठा वह अनजान मनुष्य वीणा बजा रहा है।

[७५]

हम मानवों को तुम्हारे दान हमारी आवश्यकता पूरी कर तुम्हारे पास अक्षत लौट जाते हैं।

नदी अपना दैनिक कार्य करती है और खेतों और गाँव से होकर वेग से बहती है; फिर भी उसका अनवरत प्रवाह तुम्हारे चरण धोने के लिये घूम जाता है।

पुष्प अपनी गन्ध से पवन को सुरभित कर देता है; तथापि उसका अन्तिम-कर्तव्य अपने को तुम्हें अर्पित करने में है।

तुम्हारी पूजा संसार को अकिञ्चन नहीं कर देती।

कवि के शब्दों के लोग मनमाने अर्थ लगा लें तथापि उनके अन्तिम अर्थ तुम्हें इङ्गित करते हैं।

[७६]

हे मेरे जीवन प्रभु, क्या मैं दिनानुदिन तुम्हारे सम्मुख खड़ा रह सकूँगा? निखिल भुवनेश्वर, क्या मैं करबद्ध तुम्हारे सम्मुख खड़ा रह सकूँगा?

तुम्हारे महदाकाश के नीचे नम्र हृदय, एकान्त और मौन तुम्हारे सम्मुख खड़ा रह सकूँगा?

श्रम और संघर्ष के कोलाहल से पूर्ण तुम्हारे इस कर्म निरत संसार में पलायमान जन समूह के बीच क्या मैं तुम्हारे सम्मुख खड़ा रह सकूँगा?

और हे राजाधिराज, जब इस संसार में मेरा कार्य समाप्त हो जायगा तब क्या मैं तुम्हारे सम्मुख अकेला मूक खड़ा रह सकूँगा?

[७७]

मैं तुम्हें अपना देवता जानकर दूर खड़ा रहता हूँ—मैं तुम्हें अपना न समझकर दूर रहता हूँ। मैं तुम्हें अपना पिता समझता

हूँ और चरणों में प्रणाम करता हूँ—मैं अपने मित्र के समान तुम्हारा हाथ नहीं पकड़ लेता।

अति सहज प्रेम से तुम स्वयं मेरे होकर जहाँ उतर आते हो वहाँ सुखपूर्वक हृदय से लगाये संगी की भाँति मैं खड़ा नहीं रह सकता।

हे प्रभु तुम मेरे भाइयों में एकमात्र भाई हो, पर मैं उनकी ओर नहीं ताकता, मैं अपनी कमाई में उनका भाग नहीं लगा कर अपने सर्वस्व का तुम्हारे साथ साझा नहीं करता हूँ।

हर्ष विषाद में मैं लोगों का साथ और इस प्रकार तुम्हारा साथ नहीं देता। मैं प्राण देने से हिचकिचाता हूँ और इस कारण जीवन महासागर में डुबकी नहीं लगाता।

[७८]

जब सृष्टि नवीन थी और समस्त नक्षत्र अपने प्रथम प्रकाश से ज्योतित हुए तब देवताओं ने गगन मण्डल में अपनी सभा की और गान हुआ, "अहा पूर्णता का चित्र! शुद्ध आनन्द!"

परन्तु सहसा किसी ने चिल्ला कर कहा, "प्रकाश-माला में कहीं स्थान रिक्त रह गया है और एक नक्षत्र खो गया है।"

उनकी वीणा का सुनहरी तार टूट गया, उनका गाना रुक गया और वे विस्मय से चिल्ला उठे, "हाँ खोया नक्षत्र सर्वश्रेष्ठ था। वह समस्त आकाश मण्डल की शोभा था।"

उस दिन से उसकी अनवरत खोज चल रही है और सब कहते हैं कि उससे संसार का एक आनन्द खो गया।

केवल रात्रि के गंभीरतम मौन में नक्षत्र स्मित मन्दस्वर में कहते हैं, "यह अन्वीक्षण व्यर्थ है! सर्वत्र अखंड संपूर्णता है।"

[७९]

हे प्रभु, यदि इस जीवन में तुम्हारा दर्शन मेरे भाग्य में नहीं है तो यह मेरे मन में रहे कि मुझे तुम्हारा दर्शन नहीं मिला—मैं पल भर के लिये न भूलूँ, यह वेदना मेरे साथ स्वप्न और जाग्रत अवस्था में रहे।

इस संसार रूपी हाट में मेरे दिन जैसे बीतते जाँय और मेरे हाथ दैनिक आय से भरे रहें तब यह मेरे मन में रहे कि मुझे कुछ नहीं मिला है—मैं पल भर के लिये न भूलूँ, यह वेदना सोते जागते सदा मेरे साथ रहे।

[८०]

मेरे सदा तेजोमय सूर्य, मैं उस शरद मेघ-खण्ड के समान हूँ जो आकाश में व्यर्थ भटकता फिरता है। तुम्हारे स्पर्श ने मेरे वाष्प शरीर को गला कर अपनी ज्योति में एकीभूत नहीं किया, और इस प्रकार तुमसे विलग मैं महीने और वर्ष गिन रहा हूँ।

यदि यही तुम्हारी इच्छा और तुम्हारी लीला है तो मेरी इस द्रुतगामी शून्यता को ले रंगों से चित्रित कर दो, स्वर्णमंडित कर चंचल वायु पर उसे छोड़ दो और चित्र विचित्र आश्चर्यों में विस्मृत कर दो।

और फिर जब रात्रि में यह लीला समाप्त करने की तुम्हारी इच्छा होगी तो मैं अंधकार में शुभ्र प्रभात की स्मृति में, अथवा स्फटिक सदृश पवित्रता का शीतलता में गल कर विलीन हो जाऊँगा।

[८१]

कितने ही अलस दिनों में मैंने अपने नष्ट किये समय पर खेद प्रगट किया है। परन्तु मेरे प्रभु वह कदापि नष्ट नहीं हुआ। मेरे जीवन का प्रतिक्षण तुमने अपने अधीन किया है।

पदार्थों के अन्तस् में छिपे रह कर तुम बीजों को अंकुरित, मुकुलों को पुष्पित और प्रस्फुटित पुष्पों को फलों में पर में परिणत करते हो।

मैं थक कर अपनी अलस शैया पर सो रहा था और सोच रहा था कि सब कार्य समाप्त हो गया है। प्रातःकाल उठकर देखता हूँ कि मेरी वाटिका चित्र विचित्र पुष्पों से भरी पड़ी है।

[८२]

प्रभु तुम्हारे पास अपरिमेय समय है कोई उसकी गणना नहीं कर सकता।

रात दिन बीतते जाते हैं और युग पुष्पों की भाँति विकसित और म्लान होते जाते हैं। प्रतीक्षा करने की रीति तुम जानते हो।

एक नन्हे वनपुष्प को पूर्णता तक पहुँचाने में शताब्दियाँ व्यतीत हो जाती हैं।

हमारे पास नष्ट करने के लिये समय नहीं है, और समय न रहने के कारण हमें अपनी बारी के लिये छीना झपटी करना ही होगी। विलम्ब करने में हम समर्थ नहीं हैं।

और इस प्रकार प्रत्येक अधिकार जताने वाले झगड़ालू व्यक्ति को अवसर देते जाने में ही समय बीत जाता है और अन्त समय तक तुम्हारी वेदी बिना भेंट के सूनी रह जाती है।

दिनान्त के समय तुम्हारा द्वार बन्द हो जाने के भय से मैं झपटता हूँ, पर देखता हूँ कि अभी भी समय है।

[८३]

मैया मैं तेरे कण्ठ के लिये अपने दुःख के आँसुओं से मुक्ताहार बनाऊँगा।

तुम्हारे चरण अलंकृत करने के लिये नक्षत्रों ने ज्योति की पायल बनाई है, पर मेरा हार तुम्हारे वक्ष पर रहेगा।

धन वैभव तो तुम्हारा है और उसे देना न देना तुम्हारे हाथ में है, पर मेरी वेदना तो मेरी अपनी वस्तु है और जब मैं उसे तुम्हारी भेंट करता हूँ तो तुम अपने प्रसाद से मुझे पुरस्कृत करती हो।

[८४]

यह विरह वेदना ही है जो संसार में व्याप्त है और असीम गगन में असंख्य रूप उत्पन्न करती है।

यह वियोग काही दुःख है जो सारी रात तारे तारे में टकटकी बाँध कर देखता रहता है और श्रावण की वर्षा की अँधियारी में पल्लवों के मर्मर विरहगीत बन कर ध्वनित होता है।

यही परिव्याप्त वेदना है जो घर घर में प्रेम एवं वासना, सुख और दुःख में घनीभूत हो जाती है; और यही मेरे कवि हृदय से गीत के रूप में गल कर बहती रहती है।

[८५]

प्रभु-गृह से जिस दिन वीर दल आया उस दिन उनका बल। कहाँ छिपा था ? उनके धर्म और शस्त्रास्त्र कहाँ थे ?

वे क्षीण दरिद्र और विवश दृष्टिगत हो रहे थे और प्रभु भवन से बाहर आने के दिन उन पर बाण वर्षा हुई थी।

जिस दिन वीर दल प्रभु भवन को लौटा, उसने अपना बल कहाँ छिपा दिया था ?

उनकी कृपाण गिर पड़ी थी और धनुर्बाण गिर पड़े थे; उनके ललाट पर शान्ति विराजमान् था, और प्रभु-भवन से लौटने के दिन उन्होंने जीवन के फल पीछे छोड़ दिये थे।

[८६]

यम तुम्हारा अनुचर मेरे द्वार पर है। वह अज्ञात सागर पार कर तुम्हारा सन्देश मेरे घर लाया है।

रात अँधेरी है और मेरा हृदय भीत है—फिर भी मैं दीपक लिये द्वार खोल कर उसके स्वागत के हेतु प्रणाम करूँगा। तुम्हारा अनुचर मेरे द्वार पर उपस्थित है।

मैं साश्रु वदन अञ्जलिबद्ध उसका अभिनन्दन करूँगा। उसके चरणों पर अपना हृदय रख उसकी पूजा करूँगा।

अपना कार्य समाप्त कर, मेरे प्रभात पर एक घनी छाया डाल वह लौट जायगा और अपने सूने घर में मैं एकाकी तुम्हारी अन्तिम भेंट के लिये रह जाऊँगा।

[८७]

मैं हताश भाव से उसे अपने घर के कोने कोने में खोजता फिरता हूँ; वह मुझे नहीं मिलता।

मेरा घर छोटा सा है और उसमें से जो एक बार चला जाता है फिर नहीं आता।

पर मेरे प्रभु, तुम्हारा भवन तो विशाल है, मैं उसे खोजने तुम्हारे द्वार पर आया हूँ।

तुम्हारे सान्ध्य-गगन के स्वर्णिम चँदोवे के नीचे खड़ा मैं अपने आकुल नेत्रों को तुम्हारी ओर उठाता हूँ।

मैं सनातनत्व के कूल पर आ गया हूँ जहाँ से आशा, आनन्द अश्रुपूर्ण मुखमण्डल किसी भी पदार्थ का लोप नहीं होता।

मेरे सारहीन जीवन को महासागर में डुबा दो, उसे परिपूर्णता की अगाध गहराई में निमज्जित कर दो। विश्व की सर्वमयता में मुझे एक बार उस खोये मधुर स्पर्श का अनुभव करने दो।

[८८]

भग्न मन्दिर के देवता, वीणा के टूटे तार अब तुम्हारे गीत नहीं गाते। संध्या के घंटे तुम्हारी पूजावेला निनादित नहीं करते। तुम्हारे चारों ओर का वातावरण मौन और शान्त है।

तुम्हारे निर्जन आवास में वसन्त की चपल वायु आ रही है। वह उन सुमनों का सँदेशा लाती है जो अब तुम्हारे योग्य नहीं रहे।

तुम्हारा पुराना पुजारी उस प्रसाद की चाह में भटक रहा है जो अभी तक अस्वीकृत रहा है। सांध्य वेला में जब अग्नि और छाया गोधूलि के अन्धकार में एकीभूत हो जाते हैं तब वह क्लान्त भाव से आकुल हृदय लिये जीर्ण मन्दिर में आता है।

भग्न मन्दिर के देवता, कितने ही पर्व के दिन मौन भाव से तुम्हारे समीप आते हैं। कितनी ही रातें बीत जाती हैं और दीपक नहीं जलता।

चतुर शिल्पी कितनी ही नई मूर्ति गढ़ते हैं और वे समय आने पर विस्मृति की पवित्र धारा में विसर्जित कर दी जाती हैं।

किन्तु जीर्ण मन्दिर का देवता ही बिना पूजा के निरन्तर उपेक्षित रहता है।

[८९]

अब मैं उच्चस्वर में व्यर्थ की बकवाद बन्द कर दूँ—यह मेरे प्रभु की इच्छा है। अब से मैं अति मन्द स्वर में बोलूँगी। मेरे हृदय की वाणी गीत के मर्मर स्वर में ही व्यक्त होगी।

लोग राजा की हाट की ओर वेगपूर्वक जा रहे हैं। क्रेता विक्रेता सभी वहाँ हैं। पर मुझे असमय ही काम-काज के समय दोपहर छुट्टी मिल गयी है।

तब मेरी वाटिका में असमय ही फूल खिलें और मध्याह्न भ्रमर अलस गुंजार करें।

भले बुरे के झंझट में मैंने बहुत सा समय अतिवाहित किया है, पर अब मेरे खाली दिनों के संगी कि इच्छा मेरा हृदय अपनी ओर खींचने की है, और मुझे पता नहीं की यह आकस्मिक अह्वान किस व्यर्थ की प्रयोजनहीनता के हेतु है।

[९०]

मृत्यु जिस दिन तुम्हारा द्वार खटखटायेगी, तब तुम उसे क्या भेंट दोगे?

अरे, मैं अपने अतिथि के आगे अपना पूर्ण प्राण-पात्र रख दूँगा। मैं उसे रिक्त हस्त कभी विदा न करूँगा।

शरद् ऋतु के दिन और वसन्त का रात्रि का जो रस एकत्रित है—वह, और अपने व्यस्त जीवन का समस्त धन,—यह सब उसके आगे रख दूँगा।........जिस दिन मृत्यु मेरा द्वार खट-खटायेगी।

[९१]

मृत्यु, मेरी मृत्यु, मेरे जीवन की चरम परिपूर्णता, आओ और मुझसे चुपके चुपके आलाप करो।

मैं जीवन भर तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा, तुम्हारे ही लिये मैंने जीवन के सुख दुःख सहे हैं।

मैंने जो कुछ पाया, जो कुछ मैं हूँ, मेरी जो भी आशा और प्रेम है, वह सब अनजाने ही तुम्हारी ओर जाते रहे हैं। तुम्हारे एक दृष्टिपात से ही मेरा जीवन सदा के लिये तुम्हारा हो जायगा।

वरमाला गुँथी रखी है। विवाह के पश्चात् वधू विजन रात्रि में पति मिलन के निमित्त अपने घर से विदा होगी।

[९२]

मुझे ज्ञात है कि वह दिन आयेगा जब मेरी पार्थिव दृष्टि नष्ट हो जायगी और मेरे नेत्रों पर अन्तिम पट डाल कर जीवन चुप-चाप विदा हो जायगा।

फिर भी नक्षत्र रात में चमकेंगे और पहले की ही भाँति प्रभात होगा, और सुख दुख को सागर की लहरों की भाँति उछालता हुआ समय भी बीतता रहेगा।

जब मैं जीवन के पलों के इस परिणाम पर विचार करता हूँ, तो पलों का बाँध टूट जाता है और मैं काल के प्रकाश में

अनवधानता पूर्वक निखरी धनराशि समेत तुम्हारा संसार देखूँगा। उस संसार का निम्नतम आसन, निकृष्टतम जीवन भी दुर्लभ है।

जिन पदार्थों की मैं व्यर्थ ही कामना करता रहा और वे पदार्थ जो मुझे प्राप्त हो गये उन्हें हटाओ। वास्तव में मुझे वे पदार्थ मिलें जिन्हें मैं सदा घृणा तिरस्कार करता रहा।

[९३]

मुझे अवकाश मिल गया। भाइयो मुझे विदा दो! मैं तुम्हें नमस्कार कर चलता हूँ।

अपने द्वार की यह कुंजियाँ लौटाता हूँ—और अपने घर के समस्त अधिकार त्याग रहा हूँ। अन्तिम समय मैं तुमसे मीठे बैन ही चाहता हूँ।

हम बहुत दिनों तक पड़ोसी रहे, पर मैंने जितना दिया उससे अधिक पाया अब भोर हो गयी है और मेरे अँधेरे को उजाला करने वाला दीपक बुझ गया है। मेरी पुकार हो चुकी और मैं चलने को तयार हूँ।

[९४]

मित्रो, विदाई के अवसर पर मेरे लिये शुभ कामना करो। आकाश उषा से दीप्त है और मेरा मार्ग सुन्दर है।

वहाँ ले जाने को मेरे पास क्या है, यह न पूछो। मैं रिक्त हस्त और आशान्वित हृदय लिये यात्रा पर निकला हूँ।

मैं वरमाला पहनूँगा। पथिकों के समान मेरे गैरिक वस्त्र नहीं हैं और मार्ग संकटमय रहने पर भी मेरे मन में कोई भय नहीं है।

मेरी यात्रा जब समाप्त होगी उस समय गुरु का उदय होगा जायगा और राजा के नौबतखाने में सांध्य संगीत हो रहा होगा।

[९५]

मुझे उस पल का ज्ञान नहीं है जब मैंने प्रथमबार इस जीवन को देहली लाँघी।

अर्धरात्रि के समय वन की कली की भाँति मुझे इस रहस्य में विकसित करने वाली कौन सी शक्ति थी।

प्रातःकाल जब मैंने आँखें खोलीं तो पल भर में ज्ञात हो गया कि मैं इस विश्व में नवागन्तुक नहीं हूँ, उस संज्ञाहीन, रूपहीन अज्ञेय शक्ति ने मेरी जननी के रूप में मुझे हाथों में ले लिया है।

इसी भाँति अन्त समय भी वही अनजान मेरे सदा के परिचित की भाँति आ जायगा। और मैं जानता हूँ कि जीवन से प्रेम होने के कारण मुझे मृत्यु से भी प्रेम होगा।

माता जब दाहिने स्तन से शिशु को अलग करती है तो वह रो उठता है. दूसरे ही क्षण वह बायें को पाकर आश्वस्त हो जाता है।

[९६]

जब मैं यहाँ से चलूँ तो यह मेरे अन्तिम शब्द हों कि मैंने जो देखा है वह अनुपम है।

मैंने इस कमल के छिपे मधु का आस्वादन किया है जो प्रकाश सिन्धु पर विकसित होता है, और इस भाँति मैं धन्य हूँ—मेरा यह अन्तिम उद्गार हो।

अनन्त रूपों की इस क्रीड़ास्थली में मैं अपने खेल खेला हूँ और यही मैंने उसके दर्शन किये हैं जो रूपहीन है।

जो स्पर्श से परे है उसके स्पर्श से मेरा सारा शरीर और मेरे अंग रोमांचित हो उठे हैं, और अब यदि अन्त होना है तो भले हो—यह मेरे अन्तिम शब्द हों।

[९७]

जब मेरा खेल तुम्हारे साथ चलता था तो मैंने कभी नहीं पूछा कि तुम कौन हो। तब मन में लाज नहीं थी, भय नहीं था, जीवन अशान्त बहता जाता था।

प्रातःकाल तुम मुझे अपने संगी ही की भाँति सोते से बुला कर वन वन दौड़ाते फिरते थे।

उन दिनों मैंने उन गीतों के अर्थ जानने की कभी चिन्ता नहीं की जो तुम गाया करते थे। केवल मैं साथ में गाती था और मेरा मन उसके आरोह अवरोह पर नाच उठता था।

जब जब खेल का समय व्यतीत हो गया है, तो सहारा कैसा दृश्य सम्मुख आ गया है? तुम्हारे चरण की ओर आँखें झुकाये नीरव नक्षत्रों के साथ संसार स्तब्ध खड़ा है।

[९८]

मैं तुम्हें अपनी पराजय पर विजय चिह्न तथा विजय माल से विभूषित करूँगा। अपराजित निकलना सदा ही मेरी शक्ति से परे है।

निश्चय ही मैं जानता हूँ कि मेरा दर्प चूर होगा, घोर वेदना में मेरे जीवन के बन्धन टूट जायँगे और मेरा शून्य हृदय खोखले बाँस से निकले स्वरों की भाँति विलाप कर उठेगा। तब पत्थर रो पड़ेंगे।

निश्चय ही मैं जानता हूँ कि शतदल के पत्र सदैव बन्द नहीं रहेंगे, और उसके मधु का गुप्त स्थान खुल जायगा।

नीलगगन से एक दृष्टि मुझ पर पड़कर मुझे मौन निमंत्रण देगी। मेरे लिये तब कुछ न रह जायगा और तेरे चरणों में मुझे एकमात्र मरण प्राप्त होगा।

[९९]

जब मैं पतवार छोड़ता हूँ तो मैं जानता हूँ कि अब उसे सँभालने को तुम्हारी बारी आ गई है। जो कुछ करना है वह तुरन्त किया जायगा। यह सब झंझट व्यर्थ है।

मेरे मन, तब अपने हाथ हटाले और अपनी पराजय चुपचाप स्वीकार करले; जहाँ अभी स्थित है वहीं पूर्णरूप से स्थिर बैठे रहने में सौभाग्य मान।

वायु के तनिक से झोंके से मेरे दीपक बुझ जाते हैं और उन्हें जलाने के प्रयत्न में मैं बार बार सब भूल जाता हूँ।

पर इस बार मैं समझ से काम लूँगा और धरती पर आसन बिछा कर अँधेरे में प्रतीक्षा करूँगा, और मेरे प्रभु, जब तुम्हारी इच्छा हो, चुपचाप आकर बैठ जाना।

[१००]

मैंने अरूप रतन की आशा से रूपसागर में डुबकी लगायी है।

अपनी इस जीर्ण तरी को लिये मैं घाट घाट घूमता नहीं फिरूँगा। वे दिन बीत गये जब लहरों के थपेड़े खाना मेरा खेल था।

और अब तो मैं मर कर अमर होने के लिये उत्सुक हूँ।

मैं अपनी जीवन वीणा को उस अतल लोक में ले जाऊँगा जहाँ सभा में स्वर रहित गान होता है।

मैं इसे शाश्वत स्वरों में मिलाऊँगा और जब यह अन्तिम विलाप रुदन कर चुकेगी उस समय मौन वीणा नीरव देवता के चरणों में चुपचाप रख दूँगा।

[१०१]

समस्त जीवन में तुम्हें अपने गीतों के सहारे खोजता रहा। मेरे गीत मुझे द्वार द्वार लिये घूमे, और गीतों के सहारे ही मैं इस संसार में टटोलता फिरा।

जो कुछ मैंने सीखा सब मेरे गीतों ने ही सिखाया; उन्होंने मुझे प्रच्छन्न मार्ग दिखाये, उन्होंने मेरे मन के क्षितिज पर के कितने ही तारे मुझे दिखाये।

उन्होंने सारे दिन में सुख दुख के विचित्र देश का रहस्य लोक घुमाकर अन्त में सन्ध्या समय न जाने किस भवन के सामने ला कर खड़ा कर दिया।

[१०२]

मैं लोगों में बैठकर डींग मारा करता कि मैंने तुम्हें जान लिया। वे मेरी रचनाओं में तुम्हारी छवि देखते हैं। वे आकर मुझसे प्रश्न करते हैं, "वह कौन है?" मैं नहीं जानता उन्हें कैसे बताऊँ। मैं कह देता हूँ, "यथार्थ में मैं नहीं बता सकता।" वे मुझे दोष देते और तिरस्कार कर चले जाते हैं। और तुम बैठे मुस्कराते रहते हो

मैं तुम्हारी कथा अमर छन्दों में गुम्फित करता हूँ। तुम्हारा रहस्य मेरे हृदय से फूट निकलता है। वे आकर मुझसे पूछते हैं, "अपना अभिप्राय हमें बताओ।" मैं नहीं जानता उन्हें कैसे उत्तर दिया जाय।

मैं कह देता हूँ, "उनका अर्थ कौन जाने!" वे मुसकरा कर नितान्त घृणापूर्वक चले जाते हैं। और तुम बैठे मुसकराते रहते हो।

[१०३]

हे प्रभु तुम्हें एक ही नमस्कार में मेरी समस्त इन्द्रियाँ फैल कर तुम्हारे चरणगत इस संसार को स्पर्श करें।

जल भार से नत श्रवण के मेघ के समान मेरा समस्त मन तुम्हारे द्वार पर एक ही प्रणाम में झुक जाय।

तुम्हें एक प्रणाम में मेरे समस्त गीत अपने विभिन्न स्वर एकत्र कर एक धार में प्रवाहित हो नीरवता के सागर में आ मिलें।

दिन रात उड़ते और घर लौटने के लिये आकुल मानस यात्री हंसों के समान मेरा समस्त जीवन तुम्हें एक ही नमस्कार में अपने महाप्रस्थान पथ की यात्रा कर दे।

———